E-ISSN: 2706-8927
P-ISSN: 2706-8919
IJAAS 2019; 1(2): 261-264
Received: 09-11-2019
Accepted: 16-12-2019

आदित्य प्रकाश
सहायक प्राध्यापक, प्रर्दशन कला विभाग, ओरियन्टल कॉलेज ऑफ एडुकेशन, सीसो पश्चिम, दरभंगा, बिहार, भारत

Corresponding Author:
आदित्य प्रकाश
सहायक प्राध्यापक, प्रर्दशन कला विभाग, ओरियन्टल कॉलेज ऑफ एडुकेशन, सीसो पश्चिम, दरभंगा, बिहार, भारत

नाट्य विधायें एवं उनका स्वरूप

आदित्य प्रकाश

सारांश
नाटक को काव्य का ही एक रूप माना जाता है। जो केवल श्रवण द्वारा ही नहीं बल्कि दृष्य रूप में भी मनुष्यों के हृदय में रसानुभूति कराती है।
पहली हिन्दी नाटक "नहुष" को माना जाता है। जिसकी रचना काल 1857 ई० तथा लेखक गोपाल चन्द्र गिरीधर थे।
काव्य के दो भेद माने गये है। i) दृष्य काव्य ii) श्रव्य काव्य।
दृश्य काव्य के भी दो रूप है। i) रूपक ii) उपरूपक नाटक।
अभिनय किसी भी नाटक के सभी अंगों का मूल्य तत्व है। यह नाटक का वह गुण है। जो दर्शक को अपनी ओर आकर्षित करती है।
एक सफल नाटकार को रंगमंच के सभी पहलुओं पर चिंतन अतिआवश्यक है।
भारतीय परम्परा अनुसार वस्तु, अभिनेता एवं रस को नाटक का आवश्यक अंग माना गया है। इस प्रकार नाटक के 7 अंश है। जो इस प्रकार है– i) कथावस्तु ii) अभिनेता iii) रस iv) कथोपकथन v) देशकाल vi) उद्देश्य vii) शैलि।
हिन्दी साहित्य के नाटकों का प्रारम्भ भारतेन्दुयुग को माना जाता है। जिन्होने अपने पिता गोपाल चन्द्र गिरीधर दास कृत "नहुष" को हिन्दी का प्रथम नाटक स्वीकारा है।

कूटशब्द : नाटक, दृष्य काव्य, श्रव्य काव्य, कथावस्तु, रस, कथोपकथन, शैलि

प्रस्तावना
हिन्दी के आचार्यों ने नाटक को काव्य का ही एक रूप माना है जो रचना केवल श्रवण द्वारा ही, नहीं दृष्य रूप में भी प्रेक्षकों के हृदय में रसानुभूति कराती है, उसे नाटक कहते हैं। हिन्दी का पहला नाटक "नहुष" को माना गया है। जिसका रचना काल 1857 ई० है जिसके लेखक गोपाल चन्द्र गिरीधर दास हैं।
काव्य के दो भेद माने गये है दृष्य काव्य और श्रव्य काव्य, पुन: दृष्य काव्य के दो भेद बताये गये 1. रूपक तथा 2. उपरूपक नाटक सर्वसाधारण की वस्तु है अत: उसकी भाषा शैली सरल स्पष्ट और सुबोध होनी चाहिए, जिससे दर्शक को विषय बोधगम्य हो सके।
अभिनय किसी भी नाटक के सभी अंगों का मूल तत्व है। यह नाटक की प्रमुख विशेषता होती है। यह नाटक का वह गुण है, जो दर्शक को अपनी और आकर्षित करता है। इसलिए नाटककार को नाटक के रूप, आकार, दृश्यों की सजावट और उसके उचित संतुलन परिधान व्यवस्था, प्रकाश व्यवस्था आदि का पर पुरा ध्यान रखना पड़ता है।

एक सफल नाट्य रचनाकार को रंगमंच के सभी पहलुओं पर चिंतन उपयोगी होता है, नाटक के विधि विधान, नाटक के सभी तत्व अभिनय से जुड़े होते हैं, अभिनय की श्रेष्ठता, पात्रों का वाक्चातुर्य और अभिनय कला यह एक सफल नाटक की पहचान मानी जाती है।

धनंजय ने अभिनय के चार प्रकार बताये हैं–

1. आंगिक–शरिर के द्वारा किया जाने वाला अभिनय
2. वाचिक–संवाद के द्वारा किया जाने वाला अभिनय
3. आहार्य–वेशभूषा मंच सज्जा आदि

भारतीय परम्परा में वस्तु, अभिनेता एवं रस को नाटक का आवश्यक अंग माना गया है, परन्तु पाश्चात्य विद्वानों ने कथोपकथन, देशकाल, उद्देश्य और शैलि के महत्व को भी स्वीकार किया है।

इस तरह नाटक के सात अंश हो जाते हैं, जो इस प्रकार हैं– (1) कथावस्तु (2) अभिनेता (3) रस (4) कथोपकथन (5) देशकाल (6) उद्देश्य (7) शैलि

कथा वस्तु

वस्तु का अर्थ नाटक की कथावस्तु से है। कथा इतिहास प्रसिद्ध होनी चाहिए। यह मुखादि पाँच संधियों विलास, ऋद्धि, आदि गुणों तथा अनेक प्रकार के ऐश्वर्यो से पूर्ण हो। इसकी निबन्धता गौ पूछ के अग्रभाग के समान होनी चाहिए। अर्थात बीज रूप में वर्णित कथा एक क्रम में पुष्पित होकर फल को प्राप्त कराये। व्यवहारिक दृष्टि से कथावस्तु के दो भेद दिए गये हैं– आधिकारीक कथा और प्रासंगिक कथा प्रासंगिक कथा में भी दो भेद पताका और प्रकारी माने गये हैं।

कथावस्तु के अन्य रूप एवं उनके प्रकार

जो साधन मुख्य कथा वस्तु की सूचना देते हैं, उन्हें अर्थोपक्षेपक कहा जाता है। जिनके पाँच प्रकार है– विषकम्भक, प्रवेशक, चूलिका, अंकास्य तथा अंकावतार।

अभिनय की दृष्टि से कथाये दो प्रकार की होती है– 'दृष्य' और 'श्रव्य'

संवादों की दृष्टि से कथा के तीन भेद होते हैं श्राव्य, अश्राव्य, नियत श्राव्य, नियत श्राव्य के भी दो भेद अपवारित तथा जनालिक होते हैं।

लोकवृत की दृष्टि से कथावस्तु के तीन आधार माने गये हैं– कार्यावस्था, अर्थ प्रकृति, तथा संधि।

1. कार्यावस्था पाँच होती हैं– प्रारम्भ, प्रयन्त, प्राप्त्याशा, नियताप्ति और, फलागम।
2. अर्थ प्रकृतियों के भी पाँच भेद है– बीज, विन्दु पताका प्रकरी और कार्य।
3. कथावस्तु के अंगों को समन्वित करने वाली संधियों के भी पाँच भेद आचार्यों ने माने हैं– मूख, प्रतिमूख, गर्भ, बिमर्श, तथा निर्वहण।

अभिनेता (पात्र)

पात्र अर्थात अभिनेता किसी भी नाटक का दुसरा प्रमुख तत्व है। फल का अधिकारी पात्र ही नेता कहलाता है। दशरूपककार के अनुसार नेता (अभिनेता) में विनीत, मधुर, चतुर, प्रियवादी, लोकप्रिय, वाणी–निपूण उच्चवंश वाला, स्थिरस्वाभाव वाला, युवा बुद्धिमान, उत्साही यज्ञ, कलाविज्ञ, शूर, दृढ़, तेजस्वी, शास्त्रज्ञ और धार्मिक आदि गुण का होना माना गया है।

नेता, अभिनेता प्रमुख है जिसे नायक कहा जाता है, महर्षि भरत ने इनके चार प्रकार बताये है– घिरोदात्त धीरललित, धीरप्रशांत, और धीरोदत्त। नायिका के भी स्वकीया, परकीया और सामान्य तीन प्रकार नाट्यशास्त्र में नाभिका भेद के अर्न्तगत बताया गया है।

इनके अतिरिक्त सह पात्रो (अभिनेता) के पाँच प्रकार महर्षि भरत ने बाताया है– पीठमर्द, प्रतिनायक, विदूषक कंचुकी, प्रतिहार आदि।

रस

रस योजना की दृष्टि से भरतमूनि ने नाटक में शान्त रस को छोड़कर शेष सभी रसों का प्रयोग बताया है, साथ ही श्रृंगार अथवा वीर रस में किसी एक रस को अंगी और शेष रस को अंगरूप में प्रयोग के लिए स्वीकार किया है। अतएव नवरसो में आठ रस का ही प्रयोग नाटक में होता है– श्रृंगार रस, हास्यरस, रौद्ररस, करुण रस, वीररस, अद्भूत रस, वीभत्स रस और भयानक रस। नाटको में अंगविरस का निधोरण करने के तीन मानक हैं प्रथम नाटक में बहुव्याप्ति रस, द्वितीय नाटक की परिणति रस और तृतीय नाटक के नायक में उपस्थिति रस की प्रवृति।

कथोपकथन (संवाद)

नाटक के कथोपकथनों में प्राय: संक्षिप्तता, रसानुभूति, क्षमता, सरलता, औचित्य, सजीवता, तथा पात्रानुकूलता का होना

अनिवार्य माना गया है। नाटक में नाटककार के पास अपनी तरफ से कहने का अवसर नही रहता है, वह कथोपकथन के द्वारा ही वस्तु तथा विषय का उद्घाटन तथा पात्रों के चरित्र विकास करता है।

इसलिए नाटको के संवाद एवं सम्बन्धित वार्तालाप (कथोपकथन) सरल, सुबोध स्वाभाविक तथा पात्रानुकूल होने चाहिए। गम्भीर दार्शनिक विषयों से नाटक की आनुभूति में बाधा उत्पन्न होती है। अतएव इस तरह के गुढ़ अर्थ वाले संवाद सभी अवसर पर उचित नहीं होते हैं। विषय की भोग एवं दृश्य तथा अवसर की अनुकूलता तथा स्थिति को और भी प्रभावशाली बनाने के वास्ते गीत–संगीत की योजना आवश्यक होती है। महर्षि भरत ने नाटक की संचालन के वास्ते संगीत को आवश्यक माना है– महर्षि कहते है–

> गीते प्रयत्नं प्रथमं तु कार्यः सैय्यां ही नाट्स्य वदन्ति गीतम्। गीते च वाद्ये च हि सुप्रयुक्ते नाट्य–प्रयोगो ने विपत्तिमेति।।

अर्थात्– नाट्य प्रयोक्ता को पहले गीत संगीत का अभ्यास एवं व्यवस्था करनी चाहिए, क्योंकि गीत संगीत ही नाटक की सैय्या (आधार) है। यदि गीत संगीत और वाद्यों सही ढंग से प्रयोग किया जाए तो नाट्य प्रयोग में कोई कठिनाई नहीं उपस्थित होती है।

देश काल (वातावरण)

देश काल के चित्रण में नाटकार को युग के अनुसार अपने को विशेष सतर्क रहना पड़ता है। पश्चिमी नाटको में देशकाल के अंतर्गत संकलन त्रय (समय, स्थान, और कार्यकुशलता) का वर्णन किया जाता है। वस्तुतः यह तीनो तत्व "यूनानी रंगमंच" के अनुकूल थे; जहाँ रात भर चलने वाले लम्बे नाटक और दृश्य परिवर्तन थी योजना नही होती थी। परन्तु आज रंगमंच के विकास के कारण संचलन का महत्व समाप्त हो गया है। भारतीय नाट्यशास्त्र में इसका उल्लेख नहीं होते हुऐ भी नाटक में स्वाभाविकता औचित्य तथा सजीवता की प्रतिष्ठा के लिए देशकाल एवं वातावरण का उचित ध्यान रखा जाता है। इसके अन्तर्गत पात्रों की वेशभूषा तत्कालिक, धार्मिक, राजनीतिक, सामाजिक परिस्थिति का अध्ययन आवश्यक है।

उद्देश्य

समाज में लोगों के बीच समरसता का संचार करना ही नाटक का उद्देश्य होता है। नाटक में अभिनेता पात्र का विशेष महत्व होता है। नाटक के अन्य तत्व इस उद्देश्य के साधन मात्र होते हैं। भारतीय दृष्टिकोण सदा आशावादी रहा है, इसलिए संस्कृत के प्रथम प्रायः अभी नाटक सुखांत रहे हैं।

पश्चिम के नाटककारों अथवा साहित्यकारों ने साहित्य को जीवन की व्याख्या मानते हुए उसके प्रति यथार्थ दृष्टिकोण अपनाया है, इनके प्रभाव से हमारे यहाँ भी कई दुखांत नाटक लिखे गये है। किन्तु सत्य है, कि उदात्त पात्रों के दुखांत अन्त से मन खिन्न हो जाता है।

शैलि

नाटक सर्वसाधारण की वस्तु है, अतः उसकी भाषा शैलि सरल, स्पष्ट और सुबोध होनी चाहिए, जिससे नाटक में प्रभाविकता का समावेश हो सके तथा दर्शक को क्लिष्ट भाषा के कारण बौद्धिक श्रम न करना पड़े अन्यथा रसानुभूति में बाधा पहुँचेगी। अतः नाटक की भाषा सरल व स्पष्ट रूप में प्रवाहित होनी चाहिए।

हिन्दी साहित्य में नाटक का प्रारम्भ

हिन्दी साहित्य में नाटकों का प्रारम्भ भारतेन्दुयुग से स्वीकार किया जाता है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने अपने पिता गोपाल चन्द्र गिरीधर दास कृत नहुष (1857) को हिन्दी का प्रथम नाटक स्वीकार किया है। उन्होने स्वयम सत्रह मौलिक तथा अनुदित नाटको की रचना की।

द्विवेदी युग में साहित्य का अधिक प्रगति नहीं हो सका इस काल में रचित नाटकों का महत्त्व मात्र ऐतिहासिक है। छायावाद में जयशंकर प्रसाद ने नाट्य साहित्य को एक नई दिशा प्रदान की इस काल में पारसी रंग–मंच के माध्यम से भी अनेक नाटक प्रकाश में आये।

छायावाद के बाद के काल में नाट्य साहित्य की रचना प्रर्याप्त मात्रा में हुई। इस काल में प्रमुख नाटकाकार है लक्ष्मीनारायण मिश्र, उपेन्द्रनाथ अश्क (अंजो दीदी), बिष्णुप्रभाकर (डाकटर), जगदिशचन्द्र माथुर (कोर्णाक), लक्ष्मीनारायणलाल (सुन्दर रस, मादा कैक्टस), मोहनराकेश (अषाढ़ का एक दिन), हरिकृष्णप्रेमी, उदयशंकर भट्ट, विनोद रस्तोगी, (नयाहाथ), नरेश मेहता, सुरेन्द्र वर्मा, ज्ञानदेव अग्निहोत्री, (शुतुरमुर्ग), मुद्राराक्षस, अविनाशचन्द्र मिश्र, सत्यनारायण गामी (रेडियो नाटक) आधुनिक काल में मैथिली नाटककारों की कृतियाँ भी चर्चित रही जिनमें महेन्द्र मलंगिया, आचार्य सोमदेव, प्रो० भीमनाथ झा, प्रो० रामदेव झा, शिवकान्त ठाकुर प्रमुख है।

संदर्भ

1. नाट्यशास्त्र– बावूलाल शास्त्र
2. मैथिली नाट्य उद्भव और विकास– प्रो० प्रेम शोधर सिंह
3. परम्परा शील नाट्य– जगदीश चन्द्र माथूर
4. भरत का संगीत सिद्धान्त– आचार्य वृहस्पति
5. प्रभात रवबर– दैनिक समाचार पत्र